ने स्थान-स्थान पर जाकर भाषण दिये और जनता में एक नई जागृति आ गई ऐसी अवस्था को यद्यपि सरकार ने दबाने का भरसक प्रयास किया फिर भी अतिवाद (Extremism) का प्रसार हुआ। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस दो दलों में बंट गई - संयममार्गी (moderates) एवं अतिमार्गी (Extremists)। यह विभाजन 1907 ई में सूरत में हुआ। संयममार्गी अभी भी इस प्रकार के विचार के थे कि संवैधानिक साधनों द्वारा ही फल की प्राप्ति करनी चाहिए। अतिमार्गी यह समझते थे कि साध्य प्राप्ति से ही साधनों का औचित्य निश्चित होता है। उन्होंने बहिष्कार की नीति (विदेशी माल, व्यापार, सरकारी सेवाओं, उपाधियों और पदवियां इत्यादि) को तथा स्वदेशी आन्दोलन को, राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं के स्थापना को, तथा आतंकवाद को अपनाया।

इसी बीच एक और घटना घटी। एक ओर कांग्रेस दिन-प्रतिदिन सुदृढ़ होती जा रही थी और उनकी स्वतंत्रता की भावना बढ़ती जा रही थी तो दूसरी ओर मुसलमान इस आन्दोलन से दूर-दूर होते जा रहे थे। रूपलैण्ड के अनुसार मुसलमानों की उदासीनता, यदि विरोध नहीं का मुख्य कारण शिक्षा का अभाव तथा यह अनुभव करना ही था कि वे तो भारतीय जनसंख्या के केवल चौथा भाग ही हैं। आरम्भ में इस उदासीन नीति का मुख्य कारण सर सैय्यद अहमद द्वारा समर्थित नीति भी। इस नीति का मुख्य कारण अंग्रेजी नौकरशाही द्वारा आरम्भ की गई "बांटो और राज्य करो" (Divide & Rule) की नीति भी। अंग्रेजी नौकरशाही के प्रोत्साहन पर मुसलमानों का एक प्रतिनिधि मण्डल आगा खाँ के नेतृत्व में लार्ड मिन्टो को मिला और उसको मिन्टो ने विश्वास दिलाया कि वह केवल पृथक मतदान का समर्थन ही नहीं अपितु उन्हें उनकी साम्राज्य के पूर्ति सेवाओं के लिये उनकी संख्या से अधिक प्रतिनिधित्व देने का समर्थन करेंगे। यह कृत्य एक प्रकार से साम्प्रदायिकता के लिये पासा फेंकने जैसे था सो साम्प्रदायिकता का जन्म भी हो गया था।

यदि 1892 ई का "भारतीय परिषद् अधिनियम इसलिये पारित किया गया कि कांग्रेस आन्दोलन को हानि पहुँचे, तो 1909 ई का अधिनियम कांग्रेस में संयममार्गियों तथा मुसलमानों को अपनी ओर मिलाने के लिये पारित किया गया। लार्ड मार्ले जो ग्लैडस्टन का शिष्य था और उस समय उदारवादी सरकार में तथा भारत राज्य में सचिव था, के लिये समय आ गया था कि वह कुछ और सुधार लाने का प्रयत्न करें। लार्ड मार्ले तथा लार्ड मिन्टो दोनों ही पूर्णतया सहमत थे कि अब समय आ गया है कि कुछ और राजनैतिक सुधार लाये जाने चाहिए। मिन्टो का विचार था कि भारत में अंग्रेजी साम्राज्य का चलना इस बात पर निर्भर करेगा कि समकालीन तथा परिवर्तित स्थितियों को ठीक-ठीक समझा जाए तथा उनके अनुसार आचरण किया जाए। अन्त में मिन्टो ने भारत

डा० सदीप कुमार
इतिहास विभाग

भारतीय परिषद् अधिनियम → 1909 ई०

1892 ई० के सुधारों से कांग्रेस की मांगो की पूर्ति नहीं हुई। लोकमान्य तिलक ने कांग्रेस की दुर्बल तथा भिक्षावृत्ति की नीति की आलोचना की थी। उन्होंने कहा कि "राजनैतिक अधिकारों के लिये लड़ना पड़ेगा। उदारवादी दल के लोग यह समझते हैं कि ये प्रेरणा से प्राप्त किये जा सकते हैं। हम समझते हैं कि ये दवाब से प्राप्त किये जा सकते हैं।" विदेशी शासकों की शोषण नीति से आर० सी० दत्त तथा दादा भाई नौरोजी तथा अन्य देशभक्तों के इस कथन के सत्य को समर्थन मिला कि देश की निर्धनता शासक वर्ग की इस नीति के फलस्वरूप है जिसके अनुसार अंग्रेज उद्योगपतियों को भारतीय उद्योग तथा व्यापार की बलि देकर सुदृढ़ बनाया जा रहा है।

एक अन्य कारण जिससे लोगों में असन्तोष बढ़ा वह था कि शिक्षित भारतीयों को, उचित भाग की तो बात जाने दो, सरकारी सेवाओं तथा शासन में कोई भी भाग नहीं मिला। लार्ड कर्जन की साम्राज्यवादी तथा कठोर नीतियों से आग में तेल का काम हुआ और बुद्धिजीवी लोगों में विदेशी सरकार के प्रति अधिक विरोध उत्पन्न हुआ। उसके मन में भारतीयों के लिये कोई सहानुभूति नहीं थी। उसने कलकत्ता की निगम को पूर्णरूपेण सरकारी प्रभाव के अधीन बना दिया और इसमें 1899 ई० में एक-तिहाई सदस्य कम करके यूरोपियों को बहुमत दे दिया गया। पांच वर्ष पश्चात् ऐसी ही नीति भारतीय विश्वविद्यालयों में भी लागू की गई जिससे उनकी प्रभुसत्ता समाप्त हो गई। उसी वर्ष 1904 ई० में राजकीय रहस्य अधिनियम की परिभाषा अधिक विस्तृत कर दी गई। परन्तु सबसे बड़ी ठोकर बंगाल के विभाजन से लगी जिसको बंगाल की उभरती हुई राष्ट्रीयता पर एक बड़ा प्रहार माना गया। बंगालियों ने इसे अपने प्रति तिरस्कार, मानहानि तथा धोखे" की संज्ञा दी और इसे समाप्त करने के लिये भिन्न-भिन्न आन्दोलन किये।

असंतोष के अन्य कारण भी थे। समुद्र-पार भारतीयों के साथ, विशेषकर दक्षिणी अफ्रीका में बहुत अपमानजनक व्यवहार किया जा रहा था। सम्भवत: इसीलिये कि वे एक दास-जाति के सदस्य हैं। अतएव लोगों में यह भावना जागी कि जब तक वे स्वतन्त्र नहीं हो जाते और उन्हें उचित व्यवहार की आशा नहीं करनी चाहिए और इनसे राष्ट्रवाद को बहुत प्रोत्साहन मिला। 19 वीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में भयानक अकाल तथा प्लेग का प्रकोप हुआ जिससे लोगों का दुख बढ़ गया। लोगों ने अपनी विपत्ति के लिये अंग्रेजों को उत्तरदायी ठहराया और प्लेग के संक्रमण को रोकने के लिये किये गये उचित उपायों का भी अर्थ गलत समझा। समाचार पत्रों ने जो 1882 ई० से स्वतन्त्र थे, इन सभी घटनाओं पर उचित रूप से टीका की और अंग्रेजी प्रशासन की कटु आलोचना की। यहां तक हुआ कि मिंटो ने मार्ले को लिखा कि "हमें स्थानीय समाचार पत्रों से निबटने के लिये उपाय ढूंढने होंगे।" समाचार पत्रों ने अपनी भूमिका निभाई। तिलक, बिपिन चन्द्र पाल तथा लाजपत राय

राज्य सचिव को यह लिखा "अब समय आ गया है और हमें अपनी योजना कार्यान्वित करने का कार्यक्रम निश्चित करना चाहिए न केवल कि हमारे सुधार क्या होंगे, अपितु यह भी कि ये कब और इन्हें कैसे लागू करना होगा।" मार्ले ने भारतीय जनता के विचारों को जानने के लिए इन योजनाओं को स्थानीय निकायों को भेजा। इन सभी आलोचनाओं के प्रकाश में नये सुधार प्रस्ताव बनाये गये और मन्त्रिमण्डल की स्वीकृति के पश्चात् संसद के सम्मुख रखे गये और फरवरी 1909 ई० में ये भारतीय परिषद् अधिनियम 1909 के रूप में पारित किये गये। इस अधिनियम के मुख्य उपबंध निम्नलिखित थे।

① प्रथम बार भारतीयों को भारत-मंत्री की इण्डिया कौंसिल और वाइसराय की कार्यकारिणी कौंसिल (Executive Council) में स्थान दिया गया। यह कार्य 1906 ई० से मुसलमानों और इस वर्ग के लोगों के विरोध के कारण टाला जा रहा था।

② इस अधिनियम द्वारा विधायी कौंसिलों के आकार को बढ़ा दिया गया। गवर्नर जनरल की कौंसिल और प्रांतीय कौंसिल में अतिरिक्त सदस्यों की संख्या में वृद्धि कर दी गई। लार्ड मार्ले के अनुरोध पर केन्द्रिय विधायी कौंसिल में सरकारी सदस्यों का बहुमत बनाये रखा गया जो 32 गैर-सरकारी सदस्यों के मुकाबले 37 थे।

③ प्रांतीय विधायी कौंसिलों में यद्यपि गैर-सरकारी सदस्यों का बहुमत था परन्तु उनमें से कुछ को मनोनित किया जाना था ताकि सरकार इन मनोनीत गैर-सरकारी सदस्यों की सहायता से कार्यनायक बहुमत बनाये रख सके। इस शब्दों में कौंसिलों में सदस्यों के तीन वर्ग थे।

④ इस अधिनियम द्वारा भिन्न-भिन्न हितों वर्गों और समुदायों को पृथक-पृथक प्रतिनिधित्व के लिये उपबंधित किया गया। शेष सीटें नगरपालिकाओं तथा जिला बोर्डों में बाँट दी गई जिन्हें सामान्य निर्वाचन-क्षेत्र कहा गया।

⑤ विधायी कौंसिलों के कार्यों में वृद्धि कर दी गई। बजट पर बहस के नियमों में ढील दे दी गई।

⑥ सदस्यों को पूरक प्रश्न पूछने की आज्ञा दे दी गई

⑦ सदस्यों को प्रस्ताव प्रस्तुत करने की शक्ति दी गई यद्यपि अध्यक्ष इसके लिये इनकार कर सकता था।

⑧ विधायी कौंसिलों में ऐसे विषयों के अतिरिक्त जिसे सरकार के संबंध विदेशी शक्तियों से या भारतीय राजाओं से खराब होते हों जो विषय न्यायालयों के समक्ष हों, शेष सभी सार्वजनिक हित के विषयों पर सदस्यों को चर्चा करने की शक्ति प्राप्त हो गई।

⑨ इस अधिनियम द्वारा बम्बई, कलकत्ता, बंगाल और मद्रास की कार्यकारिणी कौंसिलों में सदस्यों की संख्या बढ़ाकर 4 कर दी गई और सरकार को यह शक्ति भी प्राप्त हो गई कि वह लेफ्टीनेंट गवर्नर के किसी प्रांत में ~~सरकारी~~

कार्यकारिणी कौंसिल की स्थापना कर सके।

(10) प्रांतों में विधानपालिकाओं का चुनाव विश्वविद्यालयों की सीनेटों, जमीन्दारों, जिला बोर्डों, नगरपालिकाओं, व्यापार-मंडलों द्वारा किया जाना था।

(11) राज्याध्यक्षों को राजनीतिक अपराधियों की चुनाव-संबंधी अयोग्यताओं को दूर करने की शक्ति दी गई।

ऊपर के उपबंधों के अतिरिक्त "इस अधिनियम में एक और उद्देश्य की भी घोषणा की गई थी और वह यह कि गवर्नर-जनरल की कौंसिल में एक भारतीय को नियुक्त किया जाए। यह एक ऐसा सुझाव था जिसके विरोध में सारी परिषद् थी और जिसे सम्राट ने यह जानकर अनुमति दी थी कि पूरा मंत्री-परिषद् इसके पक्ष में है। वास्तव में यह बात 1907 ई० के उस कदम से अधिक महत्वपूर्ण थी जिसके द्वारा भारत मंत्री ने अपनी कौंसिल में दो भारतीयों को और मद्रास तथा बम्बई की कौंसिलों में एक-एक भारतीय को शामिल किया था।" इस समय मुसलमानों ने एक हिन्दू (श्री सिन्हा जो उस समय एडवोकेट-जनरल थे) की नियुक्ति का विरोध किया परन्तु उन्हें यह वचन दिया गया कि दूसरा निर्वाचित व्यक्ति मुसलमान होगा और ऐसा वास्तव में किया गया। इस प्रकार कीथ का कहना है कि सुधारों के निर्माताओं ने भारत में संसदीय संस्थाओं अथवा उत्तरदायी सरकार का विचार नहीं पनपने दिया, "परन्तु उनका मत था कि उन्हें अराजकता की उभरती हुई शक्तियों के विरुद्ध, सम्राट के पक्ष में, भारत के उच्च वर्गों की वफादारी को एकत्र करने में कोई कसर नहीं उठा रखनी चाहिए।"

इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर, लार्ड मिन्टो ने लार्ड लिटन की उस योजना को, जिसके द्वारा केन्द्र और प्रांतों में सलाहकार समितियाँ स्थापित करने की कल्पना की गई थी, फिर से लाने के बारे में सोचा और यह सुझाव दिया कि इन समितियों में राजा और बड़े जमीन्दार इसके लिये बैठेंगे। परन्तु राजाओं ने अपने से निचले वर्ग (यानी जमीन्दारों) के साथ बैठने से इंकार कर दिया और इसलिये यह योजना असफल हो गई। परन्तु इस घटना का महत्व इस बात में है कि इसका उद्देश्य अराजकता और लोकतंत्र के संघर्ष के विरोध में राजाओं की सहायता प्राप्त करना था। सलाहकार समितियों के इस सुझाव का भारतीय प्रतिनिधियों द्वारा भी जमकर विरोध किया गया। उनको भय था कि इन कौंसिलों का प्रयोग लाला लाजपत राय जैसे नेताओं के निर्वासन जैसे मामलों में ब्रिटिश लोकमत को गुमराह करने के लिये किया जायेगा। जिन मामलों में अंग्रेज कौंसिलों की सहमति प्राप्त कर सकते थे उन्हें वे छाप सकते थे और जिन मामलों में उनकी आलोचना होती थी उन्हें छापने से इंकार कर सकते थे।